प्राचीनतम वैष्णव-स्थापत्य

डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू"

राजस्थान के चित्तौड़गढ तहसील में घोसुंडी-नगरी गाँव में नारायण-वाटिका के अवशेष आज भी हैं, जो प्राप्त शिलालेख के आधार पर ईसापूर्व दूसरी शती का है। यह स्थान प्राचीन माध्यमिका नगरी है। वेदों और ब्राह्मणों में जिस अश्वमेध यज्ञ का जिक्र आता है, उसका प्रारम्भिक और प्रामाणिक अभिलेखीय साक्ष्य इसी नगरी से मिला है। यहाँ संकर्षण एवं वासुदेव की उपासना के प्रमाण ई.पू. दूसरी शती में भी मिलते हैं। यहाँ से संस्कृत का प्राचीनतम अभिलेख मिला है।

*राजश्री कॉलोनी 40, विनायक नगर, उदयपुर, राजस्थान, मेल : skjugnu@gmail.com

गीता में श्री कृष्ण अवतारवाद का जो उपदेश करते हैं वह सात्वत और कालान्तर में पाञ्चरात्र, भागवत और उनसे जुड़े मतों की प्रतिष्ठा में सहायक हुआ। यामुनाचार्य ने आगम प्रमान्य में ऐसे मतों के उदय और विकास के साथ उनकी मान्यताओं को महत्त्व दिया है। इस काल तक भगवदीय अवतारों से जुड़े स्थलों की यात्राएँ निकाली जाने लगीं और माहात्म्य भी लिखे जाने लगे।

राजस्थान का आबू पर्वत वह है, जिसका जिक्र वेदों में आया है। यह वह पर्वत है जहाँ श्रीकृष्ण ने अपना कुछ समय व्यतीत किया था। हरिवंश, जिसे महाभारत का खिल कहा जाता है, यह सिद्ध करता है कि इस पर्वत पर श्रीकृष्ण का आगमन हुआ था। उन्होंने पुत्र प्रद्युम्न तथा भाई सात्यकि के साथ इस पर्वत पर रात्रि विश्राम किया था। उनके आगमन पर यह पर्वत विनम्र हो गया अर्थात् उसको समतल किया गया, आवास के योग्य बनाया गया। वह शाण जैसा हो गया, यह घटना जिस स्थल पर हई, वह आज सारणेश्वर के नाम से ख्यात है :

यतः स शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समभवन्नृप।
वरं प्रादात् ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः।। [1]

इस अवसर पर श्रीकृष्ण ने उस पर्वत को यह वरदान दिया कि तुम शाणपाद के नाम से ख्यात होओगे। जैसे हिमालय पर्व के ऊपरी आधा भाग परम पवित्र होता है, उसी के समान तुम भी शुभ एवं पवित्र बने रहोगे। यही पर उन्होंने शिव का पारिजात के पुष्पों से पूजन किया और स्तुति की। वे शिव शाणेश्वर कहे गए।

प्रारम्भिक प्रतिमाएँ पारियात्र की :

उन्होंने यह भी वरदान दिया कि तुम हारे पाषाण से ही विष्णुलोक के चाहने वाले लोग भगवान की प्रतिमा बनाकर उसकी सेवा करेंगे -

पाषाणैः प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव।
शुश्रूषन्ति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकांक्षिणः।।[2]

स्पष्ट है कि विष्णु की प्रतिमा के निर्माण में इस पर्वत के पाषाण का बहुतायत से और बहुत प्राचीन काल से उपयोग होता आया है। इन्द्र के साथ उनका युद्ध पुष्कर में हुआ था ओर जनार्दन ने आबू से ही वहाँ के लिए प्रस्थान किया था। उस काल में यहाँ बहुत से असुर रहा करते थे, श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं सदा ही तुम पर निवास करूँगा, उन भयानक

1. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व 74, 14 2. उपर्युक्त 74, 54

असुरों का दमन करूँगा। इस प्रसंग में यह महत्त्वपूर्ण सत य भी छिपा हुआ है कि तब यहाँ एक बस्ती के ध्वंसावशेष थे, जिसका नाम षट्पुर था। लोग उसे लेकर कई प्रकार की बातें करते थे।

पहला वाटिका मन्दिर और उसका स्थापत्य :

श्रीकृष्ण का पहला मन्दिर नारायण वाटिका के रूप में चित्तौडगढ़ के पास माध्यमिका नगरी में बना था जिसका ईसापूर्व द्वितीय सदी का अभिलेख मिल चुका है। यह मथुरा के प्रमाणों से अधिक पुराना है। (श्रीकृष णजुगनू - मेवाड का प्रारंभिक इतिहास, तृतीय अध्याय)

जब मैं माध्यमिका नगरी में अश्वमेधयाजि महाराज सर्वतात द्वारा संकर्षण व वासुदेव की नारायण वाटिका के लिए शिला प्राकार बनाने के सन्दर्भ पर काम कर रहा था, तब बार बार सोच रहा था कि मेवाड़ में वैसी स्थापत्य-परम्परा कहीं होनी चाहिए। नगरी का वह अभिलेख ईसा पूर्व दूसरी सदी का है जिसे प्रोफेसर भांडारकर ने सम्पादित किया और फिर नारायण वाटिका के रूप विधान पर कई विद्वानों ने कई कई बार लिखा व सोचा, सोचकर सन्दर्भ खोजे। मैं जब उस सन्दर्भ पर काम कर रहा था तो मुझे मेवाड़ की देव वाडियाँ (देव वाटिका) की परम्परा याद आती रही और बार बार लगता रहा कि यहाँ देवकुल वाटिका की परम्परा नारायण वाटिका से भिन्न नहीं होगी। कदाचित यही देवालयों के आरंभिक विकास का रूप होगा।

हाल ही सलूम्बर कस्बे में एक देवकुल वाटिका पर मेरी दृष्टि पड़ी जो ज्यादा पुरानी तो नहीं लेकिन मुझे नारायण वाटिका याद आ गई। अशोक मौर्य की रानी, राजकुमार तीवर की माँ कुरुवाकी की विकसित अम्ब वाटिका भी याद आ गई... इस वाटिका में सघन पेड़ के नीचे दो प्रकोष्ठ में शिला विराजित है। इसके चारों तरफ प्राकार या गोलाकार मेढ़ी सहित परकोटा बनाया गया है। श्रद्धा रखने वाले जब तब आते हैं और मनौती पूरी होने पर जात देते हैं। यदि मरम्मत की जरूरत हो तो भी करवाते हैं...। कुछ और भी कुलगत रस्में व परम्पराये हैं मगर सबसे रोचक बात ये कि यह सिला प्राकार की परिपाटी का स्थापत्य है। स्थापत्य शास्त्रों में इसका हवाला नहीं, लेकिन लोक ने लगभग ढाई हजार साल से इस प्रथा को सुरक्षित रखा है....।

माध्यमिका नगरी का माहात्म्य

नगरी गांव माध्यमिका नामक नगरी थी। यह मथुरा के बाद देश के ज्ञान-विज्ञान का बडा केन्द्र रही। वेदों और ब्राह्मणों में जिस अश्वमेध यज्ञ का जिक्र आता है, उसका प्रारंभिक और प्रामाणिक अभिलेखीय साक्ष्य इसी नगरी से मिला है। यहां धातु व्यापार होता था। यहां की बनी साड़ी "माध्यमिक" के नाम से बनारस तक ख्यात थी।

नगरी-घोसुंडी गाँव की प्रख्यात नारायण वाटिका स्थित प्रकाश-स्तम्भ

यहाँ सालवों और मालवों ही नहीं, शिबियों और पाराशरीय लोगों की बहुलता थी। दक्षिण में जिस नारायण की भक्ति का उदय हुआ, वह विदिशा के साथ इस धरती पर भी स्थापित हुए। पहला देवालय यहीं बना। तब

वाटिकाओं में पूजन योग्य स्वरूप को स्थापित किया जाता था। उसके चारों ही ओर प्राकार या परकोटा आज के देवरों की तरह ही बनाया जाता था। इसे "नारायण वाटका" अभिलेख में कहा गया है। भागवतों का यहाँ बोलबाला था। फिर बौद्धों और जैनों ने भी इसे अपना केंद्र बनाने का प्रयास किया। शैवों और वैष्णवों में देवालय बनाने की प्रतिस्पर्धा ही रही। शिवालय क्षत्रप काल तक परचमधारी रहा।

मेगास्थनीज को इस स्थान का पता था। चाणक्य को भी यहाँ की खानों के लक्षण ज्ञात थे। यहाँ पञ्चमार्क्ड सिक्के चलन में थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 641 ई. में इसकी यात्रा की थी। खानों से धनी होने के कारण ही यह नगरी मिनेंडर की आंखों में चढ़ी और उसने इस पर आक्रमण करना तय किया। अपनी सेना के दो टुकडे करके उसने एक सेना को अपोलोडोटस के नेतृत्व में नगरी की ओर भेजा। इस सेना ने नगरी को घेर लिया। महाभाष्य के रचयिता महर्षि पतंजलि ने उसे आंखों देखा। नगरी के यवनों द्वारा किए गए घेरे को पतंजलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है।

भारत पर इस तरह का घेरा पहली बार था। कोई आदमी हिल नहीं सकता था। एक ओर बेड़च जैसी बरसाती नदी तो दूसरी-तीसरी तरफ पहाड़। तब दरीबा और आंगूंचा की खानों की चांदी के ढेर उठाए गए।... और नगरी को ऐसा तबाह किया कि उसके चर्चे बृहत संहिता के काल, 587 ई. तक बने रहे। भारत में नगरों के पतन की पहली कहानी नगरी से शुरु होती है। अशोक के काल में यह क्षेत्र आहार के नाम से जाना गया जिसका मतलब था जिला। नगरी से मिले सिक्कों में शिबि जनपद का नाम मिलता है।

यहाँ श्रीकृष्ण की पूजा का प्राचीनतम प्रमाण है। मेवाड़ का यह इलाका तब शिबियों के अधिकार में था और चारों ही ओर गोचारकों की बहुलता थी। ये गोठां कहे जाते थे, इनके बीच जो क्षेत्र था वह 'माध्यमिका' कहा जाता था। देशज भाषा में मज्झमिका। यही वह क्षेत्र था जहां चांदी की उपलब्धता को देखकर यवनों की सेना ने सेनापति अपोलोडोटस के नेतृत्व में हमला किया। स्वयं पतंजलि ने उस घेरे को देखा और अपने 'महाभाष्य' में उसका जिक्र किया। यह वह दौर था जबकि मिनेण्डर ने भारत पर हमला किया था और बौद्ध मत को स्वीकार किया था। यह स्थान वही है जिसको पाण्डवों ने विजित किया और उस विजय की याद को व्यासजी ने 'महाभारत' में लिखा। इस माध्यमिका के नष्ट होने का प्रमाण सर्वप्रथम वराहमिहिर ने दिया है। ह्वेनसांग ने इस इलाके का वर्णन किया है, खासकर यहाँ की उपज-निपज का। यह मुख्यमार्ग पर था और विदिशा, मथुरा से जुड़ा हुआ था। गुजरात के वस्त्रापथ-जूनागढ़ से लगा हुआ।

नगरी तक उत्तरी भारत के कई यात्रियों का आना जाना लगा रहता था। इनमें समुद्रतटीय लोग भी थे तो बाहर से आने वाले भी। यहां से वैष्णव मत के प्रचार का श्रीगणेश हुआ और संकर्षण या बलदेव के साथ ही वासुदेव श्रीकृष्ण की पूजा के लिए स्थण्डिल जैसे स्थान का प्रयोग किया गया जो वर्तमान के मन्दिर का प्रारंभिक रूप था। यह स्थण्डिल वाटिका के भीतर होता था। यह बाड़ी नारायण वाटिका के नाम से ख्यात हुई। दूसरी सदी ईसापूर्व में अश्वमेध यज्ञ करने वाले पराशरी पुत्र सर्वतात ने इस नारायण वाटिका के लिए परकोटा बनवाया और उस पर दो शिलालेख एक ही पाठ वाले लगाए। यह शिलालेख आज तक मौजूद है, ब्राह्मीलिपि वाला। उदयपुर के राजकीय पुरातत्व विभाग के संग्रहालय में देखा जा सकता है। प्रो. भांडारकर को इस शिलालेख को पढ़ने का श्रेय है।

उन्होंने जब इस मान्यता को उठाया तो वासुदेव शरण अग्रवाल ने स्वीकारा कि यही वह स्थान है जहां विदिशा के हेलियोदोरस के गरुडस्तम्भ के निर्माण से पूर्व वासुदेव श्रीकृष्ण की पूजा आरंभ हो चुकी थी। इस प्रकार यहां श्रीकृष्ण की पूजा

का प्राचीनतम प्रमाण मिलता है, अब वह नारायणवाटिका नहीं रही, मगर वहां लगा प्रकाशस्तम्भ आज भी इस तथ्य को अपने हृदय में संजोये हुए है। बार बार मुझे यह नगरी गांव याद आता है जिसने दुनिया के लिए वासुदेव को पहली बार प्रतिष्ठा के योग्य समझा और उसकी सशक्त शुरुआत पराशरी पुत्र महाराजा सर्वतात ने की थी।

अंवलेश्वर का विष्णु कीर्तिस्तम्भ :

राजस्थान और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित अंवलेश्वर गांव उस दौर में वैष्णव मत की गतिविधियों का केंद्र था जबकि मथुरा (ब्रज, शोरसेन) और माध्यमिका (मेवाड़) के साथ विदिशा (मध्यभारत) में इस मत की गतिविधियां परवान पर थीं। वर्तमान में यह गांव राजस्थान के प्रतापगढ़ जिले में है। कृत संवत् सर के उद्भव के आसपास की बात है। तब ये सभी भागवत धर्म के केंद्र के रूप में उभर रहे थे और वहां स्थूण के समानान्तर कलात्मकस्तम्भ बनाकर उन पर अभिलेख लिखवाए जा रहे थे। विदिशा में यवनदूत हेलियोदोरस ने गरुडस्तम्भ बनवाकर खड़ा किया, वहीं मथुरा में भी ऐसे स्तम्भ बने और माध्यमिका में सर्वतात नामक शासक ने नारायण वाटिका का परकोटा बनवाकर चतुर्व्यूह के अन्तर्गत संकर्षण-बलराम और वासुदेव की आराधना को प्रतिपादित किया...।

मालवा और मेवाड़ - वागड़ के कांठल क्षेत्र के अंवलेश्वर का स्तम्भ अभिलेख करीब 22 सौ साल पुराना है। यह अठपहल स्तम्भ है। पुरातत्व विभाग के अधीन कुण्डस्थल के आसपास यह मिला है। यहाँ से खुदाई में कई वस्तुएँ मिली थीं। इस पर तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में १४ पंक्तियाँ लिखी गई हैं और स्पष्टरूप से पठनीय है। हालाँकि इसकी आरम्भिक पंक्तियां उपलब्ध नहीं है। ('मेवाड़ का प्रारंभिक इतिहास', पृष्ठ 212)

इसको पढ़ने का प्रारम्भिक प्रयास उज्जैन के प्रसिद्ध पुराविद् प्रो. श्री वी. एस. वाकणकर ने किया था। पुरातत्त्व विभाग के अधीक्षक और इन पंक्तियों के लेखक के मित्र स्व जगदीशचंद्र जोशी, इतिहासकार रामवल्लभ सोमानी और अहमदाबाद के एन. एम. कंसारा ने भी इसके पठन का प्रयास किया। इससे विदित होता है कि आवरा गाँव के भागवत मतानुयायी पोण ने इस पत्थर-स्तम्भ (सेल भुजा) का निर्माण कार्य करवाया और सिद्ध किया वह उत्तर दिशा की ओर से होने वाले किसी भी हमले से बचाने वाला था। उसकी ख्याति तीनों ही लोकों में प्रसारित हो, यह ध्येय है। सचमुच एक ऐसे प्रभावी शासक या व्यक्तित्व की स्मृति यह स्तम्भ संजोये हुए है, जिसके बारे में आज कोई कुछ नहीं जानता। हां, यह पाषाण का स्तम्भ अवश्य उसके नामो निशान को अक्षुण्ण रखे हुए है। इस पर लिखा पाठ है -

तेन उतर रखितेन सारी, कुलीनर पोण पुतेन सचा भागवतेन भगवता अपरक,

(नि) वासिना सवेसु लोकेसु विसुत किनीनं भगवतां सेला भुजा कारिता भगवतां अपराता

पु सेना स सपुतस संभायस।

इस आशय है : उस पोण पुत्र कुलीनन भागवत नामक व्यक्ति या तापुसेन राजा ने सेल भुजा का निर्माण करवाया, जो भागवत मतानुयायी, उत्तर दिशा का संरक्षक, कल्याणकारी और अपरा का निवासी था और जिसकी कीर्ति तीनों लोकों में विश्रुत है (या हो, यह उद्देश्य है)।

साक्ष्यों के रूप में अक्षर दीप्ति अनुपम है। कहाँ-कहाँ अक्षरों की ज्योति अपने अंक से आलोकित होती है और हमें अतीत के गौरव से साक्षात्कार करवाती है।

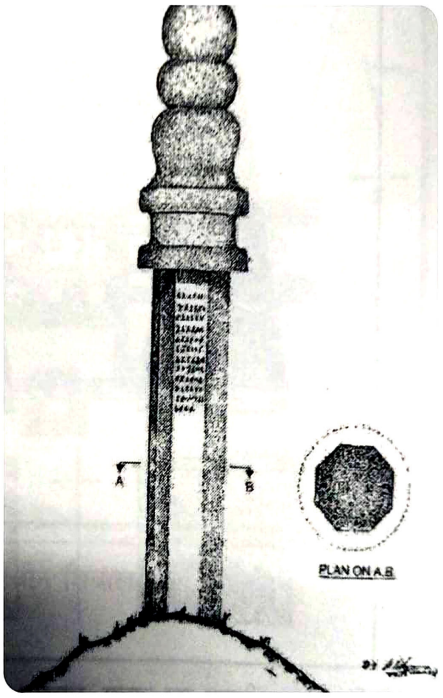

डॉ. वाकणकर जी द्वारा बनाया गया अंवलेश्वर स्तम्भ का स्केच. सौजन्य : नारायण व्यास। वाकणकरजी तथा जगदीश जोशी के साथ नारायण जी प्रतापगढ़ से अवलेश्वर सायकिल से गए थे।

***